Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
January to March 2025 E-Journal, Volume I, Issue XLIX, ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

भारत में जनजातीय अधिकारों पर संवैधानिक विमर्श: एक ऐतिहासिक पुनरावलोकन और समकालीन प्रासंगिकता

राहुल रोत*

* शोधार्थी (राजनीति विज्ञान) मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.) भारत

प्रस्तावना – भारतीय संविधान, जो भारत के सामाजिक–राजनीतिक संरचना का प्रमुख आधार स्तंभ है, ने अपने निर्माण के प्रारंभिक चरण से ही देश के जनजातीय समुदायों (अनुसूचित जनजातियों) के अधिकारों, पहचान और विकास से संबंधित मुद्दों पर गहन चिंतन और विमर्श को समाहित किया है। संविधान सभा की बहसों और विभिन्न समितियों की रिपोर्टों में इन समुदायों की विशिष्ट आवश्यकताओं, उनके ऐतिहासिक शोषण, और उन्हें राष्ट्र की मुख्यधारा में समाहित करने की चुनौतियों पर विस्तार से चर्चा की गई थी। इन बहसों का परिणामस्वरुप ही पांचवीं और छठी अनुसूची, अनुच्छेद 244, तथा जनजातीय सलाहकार परिषदों जैसे विशेष संवैधानिक प्रावधानों के रूप में सामने आया, जिनका उद्देश्य इन समुदायों के पारंपरिक रीति रिवाज, पारंपरिक जीवन शैली, संस्कृति और भूमि अधिकारों का संरक्षण सुनिश्चित करते हुए उनके समावेशी विकास को गति देकर उनके कल्याण और समग्र विकास की नींव रखनी थी।

भारत जैसे विविधतापूर्ण राष्ट्र में, जहाँ जनजातीय समुदाय एक महत्वपूर्ण जनसंख्यात्मक और महत्वपूर्ण सांस्कृतिक घटक का प्रतिनिधित्व करते हैं, संवैधानिक निर्माताओं की दूरदर्शिता और उनके द्वारा स्थापित ढाँचे का विश्लेषण अत्यंत प्रासंगिक हो जाता है। स्वतंत्रता के सात दशकों से अधिक समय बीत जाने के बाद भी, जनजातीय क्षेत्रों में विकास की असमानताएँ, चुनौतियाँ, भूमि विस्थापन, शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाओं तक पहुँच का अभाव तथा सांस्कृतिक पहचान का क्षरण जैसी चुनौतियाँ बनी हुई हैं। यह स्थिति इस प्रश्न को उठाती है कि क्या संविधान सभा में की गई बहसें, उनसे निकले प्रावधान और उनके पीछे की मूल भावना वर्तमान संदर्भ में अपनी प्रासंगिकता बनाए हुए हैं।

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य भारत में जनजातीय मुद्दों पर हुई संवैधानिक बहसों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का गहन विश्लेषण करना है। यह अध्ययन विशेष रूप से उन तर्कों, विचारों और आशंकाओं पर प्रकाश डालेगा जो संविधान के निर्माण के समय जनजातीय कल्याण और प्रशासन के संबंध में व्यक्त किए गए थे। इसके साथ ही, शोध इन बहसों की वर्तमान प्रासंगिकता का मूल्यांकन करेगा कि कैसे वे आज भी जनजातीय नीतियों, कानून निर्माण और उनके सामाजिक–राजनीतिक सशक्तिकरण के प्रयासों को प्रभावित कर रही हैं। क्या वे बहसें वर्तमान चुनौतियों के समाधान के लिए कोई मार्गदर्शन प्रदान करती हैं, या समय के साथ उनकी व्याख्या और कार्यान्वयन में बदलाव की आवश्यकता है? यह शोध संवैधानिक बहसों और वर्तमान जनजातीय स्थिति के बीच के अंतर्संबंधों की पड़ताल करके नीति–निर्माताओं, शोधकर्ताओं और नागरिक समाज के लिए मूल्यवान अंतर्दृष्टि प्रदान करने का प्रयास करेगा, जिससे जनजातीय समुदायों के अधिकारों और आकांक्षाओं को बेहतर ढंग से संबोधित किया जा सके।

जब 13 दिसम्बर 1946 को पण्डित नेहरु ने संविधान सभा में ऐतिहासिक उद्देश्य प्रस्ताव पेश किया। जिसमें संवैधानिक ढांचे एंव दर्शन की झलक के साथ यह भी कहा गया कि अल्पसंख्यको, पिछडे वर्गों तथा जनजातीय क्षेत्रो के लोगो को पर्याप्त सुरक्षा प्रदान की जाएगी।

अत: प्रस्तुत शोध–पत्र में संविधान निर्माण के दौरान संविधान सभा में जनजातीय विषयो पर हुई बहस, विचार–विमर्श के आधार को समझने हेतु भारत के जनजाति समुदायों के विस्तृत इतिहास को संक्षेप में विभिन्न काल खंडो में समझने का प्रयास किया गया है। इस क्रम में जनजातियो की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, नृजातीय लक्षण(रेशियल प्रोफाइलिंग),ब्रिटिश काल और आधुनिकरण के दौरान जनजाति, स्वतंत्रतोत्तर काल में जनजातियों की स्थिति और अंत में इन सब उपरोक्त बिन्दुओ के आधार पर जनजातीय क्षेत्रो के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण मुद्दे जो सभा में उठाये गए, बाद में सम्मिलित प्रावधानों में विशेष रूप से पांचवीं अनुसूची और छठी अनुसूची की महत्वता और आवश्यकता और अंतत: अनुसूचित क्षेत्रो के लिए विशेष प्रावधान करते समय संविधान की मूल भावना का विस्तृत अध्ययन और विश्लेषण किया गया है।

भारतीय उपमहाद्धीप में आदिवासी समुदाय की उपस्थिति अत्यंत प्राचीन है यह समुदाय सदियों से जंगलो और दूर–दराज के पहाड़ी क्षेत्रो में निवास करते हुए आये है। सामान्यत: आदिवासी शब्द का प्रयोग किसी भौगोलिक क्षेत्र के उन निवासियों के लिए किया जाता है जिनका उस भौगोलिक क्षेत्र से ज्ञात इतिहास में सबसे पुराना सम्बन्ध रहा हो। भारत में आदिवासियों के लिए भारतीय संविधान में जनजाति शब्द का प्रयोग किया गया है। जनजाति शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा जे ट्रिबुस (Tribus) से हुई है (Oxford english dictionary, 1933)। पहले रोमन इस शब्द का प्रयोग समाज में विभाजन को निर्दिष्ट करने के लिए करते थे। कालांतर में इस शब्द का प्रयोग गरीब लोगो के लिए किया जाने लगा। फ्राइड के अनुसार 'जनजाति' शब्द का इस्तेमाल सामान्य तौर पर 'सामाजिक रूप से सामंजस्य पूर्ण इकाई' के रूप में किया जाता है जो एक क्षेत्र से जुडी होती है और जिसके

सदस्य खुद को राजनीतिक रूप से स्वयं को स्वायत्ता मानते है' (Morton, 1975)।

अंग्रेजी भाषा में इस शब्द का प्रचलन उपनिवेशवाद के विस्तार के दौरान विशेष रूप से एशिया और अफ्रीका के सन्दर्भ में हुआ। यूरोप में राष्ट्रवाद के उभार के साथ, जनजाति शब्द का इस्तेमाल एक निर्दिष्ट क्षेत्र के भीतर एक निश्चित भाषा बोलने वाले लोगो के समुदाय के सामाजिक-राजनीतिक उपयोग में विशिष्ट स्थिति को दर्शाने के लिए किय गया था। यूरोपीय शब्दावली में उदारवादी विचारधारा से राष्ट्रवादी विचारधारा के क्रमिक अवस्था को प्रकट करने के लिए कबीले, जनजाति और राष्ट्र जैसे शब्दों का उपयोग किया गया (Morton, 1975)।

अब हम जानते है की ट्राइब अत: जनजाति शब्द एक साम्राज्यवादी आकांक्षाओ का परिणामस्वरूप एक उत्पाद है, जिसमे आदिवासियों पर सैंकड़ो वर्षो के दमन, अत्याचार, प्राकृतिक संसाधनों-जंगलो को छीनकर उनकी सांस्कृतिक विरासत को खंडित कर आधुनिकता के नाम पर उन्हें मुख्य धारा में लाने का पाखंड मात्र है। इस सन्दर्भ में उदय चन्द्र का मानना है ऐतिहासिक रूप से ये पहाड़ो और जंगलो में बसने वाले लोग कृजो बाद में जनजाति बनेकृ वे ना तो राज्यविहीन थे, ना ही इतिहास से बाहर, ना ही सरल, गैर-श्रेणीबद्ध, समतावादी समुदाय। वास्तव में तो ये पूर्ण रूप से व्यस्त थे अपने शासन में,जंगल-जमीन राजनीति में, अन्य समूहों के साथ सहायक संबंधो में, अपनी विशिष्ट व्यावसायिक विशेषज्ञता में, और युद्धों मेंद्य सामाजिक प्रथाओ रीति-रिवाजो के आधार पर वे आंतिरक रूप से विविधतापूर्ण श्रेणीबद्ध और लैंगिक समुदाय भी थे। (Banerjee, 2016)

अत: जब भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुई तब भारतीय संविधान सभा में जनजातियों के अधिकारों और उनकी सुरक्षा को लेकर कई महत्तवपूर्ण बिन्दुओ पर बहस हुई जो अंतत: संविधान में उनके संरक्षण हेतु प्रावधानों के रूप में परिणित हुए।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि- ऋग्वैदिक काल में मुख्यत: आर्य और अनार्य का वर्णन मिलता है। इसमें अनार्य भारतवर्ष के सबसे प्राचीन निवासी है। एकमत के अनुसार आर्यो के भारत आगमन से पूर्व अनार्य ही भूमि के स्वामि थे। आर्यो के आगमन के पश्चात इनमे सदैव संघर्ष होने लगे अंतत: आर्यों ने अनार्यो को पराजित किया। प्राचीन साहित्यों में इन्हें अनेक शब्दों से अभिहित किया गया जैसे अनासा(चपटी नाक वाले) मुध्रावक(जिनकी भाषा समझ ना आएं), दस्यु (दास) आदि।

किसी भी भारतीय भाषा में जनजातियो के लिए पहले कभी कोई शब्द प्रयुक्त नही हुआ था। प्राचीन काल में जनजातियाँ कुछ विशिष्ट नामो से जन जाती थी जैसे गोंड, संथाल और भील परन्तु कालांतर में आधुनिक भारतीय भाषा में इनके लिए नए नाम गढ़े गए जैसे-वन्यजाति, वनवासी, पहाड़ी, आदिमजाति, आदिवासी। यही बात यहाँ भी सिद्ध होती है कि भारत में प्रथम जनगणना के समय से ही जनजाति समुदाय की जनसँख्या का सही-सही अनुमान लगाना कठिन रहा है, और उतनी ही कठिनाई उनकी परिभाषा गढ़ने और उन्हें वर्गीकृत करने में भी रही है क्यूंकि जातियों और जनजातियो कि विभिन्न जनगणना रिपोर्टो और अध्ययनों में,उन्हें विभिन्न नामो से पुकारा गया है, जैसे आदिवासी जनजातियाँ, आदिम जनजातियाँ, आदिवासी आबादी, एनिमिस्ट, हिन्दू आदिवासी,आदि (Mehta, 1953)।

जॉन हेनरी हट्टन जो 1931 में जनगणना आयुक्त थे उन्होंने कहा कि 'ट्राइब(जनजाति) शब्द का प्रयोग उन समुदायो को शामिल करने के लिए किया था कि जो अभी भी इस आधार पर संगठित है की वे अब तक जाति नहीं बन पायी' (Hutton, 1933)।

भारत में जनजातियो के क्षेत्र, भाषा, रीति-रिवाज, संस्कृति, धर्म, नस्लीय लक्षण आदि के आधार पर एक दुसरे से भिन्न होते है। अक्सर एक जनजाति के पास एक अलग बोली और अलग सांस्कृतिक लक्षण होते है। पश्चिमी देशो और भारत में भी जनजाति शब्द का अर्थ पहले से भिन्न हो गया है (Verma, 1990)।

जनजातियों के जातीय लक्षण (रेशियल प्रोफाइल)- भारतीय जनजातीय वर्गीकरण पर चर्चा करते समय भारतीय मानवविज्ञानी बी.एस.गुहा (1894-1961) को सदैव उद्धृत किया जाता है। गुहा ने अपने शोध में जनजातीय समूहों के बीच शारीरिक रूप से अन्तरो को निर्धारित करने के लिए ऐन्थ्रोपोमेट्रिक(Anthropometric) मापों का उपयोग किया किया। ऐन्थ्रोपोमेट्रिक माप मनुष्यों के शारीरिक पहुलओं को मापते है जैसे कि आपके सर की परिधि, आप कितने लम्बे है या आपका वजन कितना है बैठने की स्थिति से आपकी ऊंचाई कितनी है, त्वचा और मांसपेशियों की मोटाई और आपकी बांह की लम्बाईद्य आपकी त्वचा का रंग आदि।

इस तरह नस्लीय विशेषता के आधार पर गुहा(1935) ने इन्हें मुख्य रूप से तीन नस्लीय श्रेणियों में विभक्त किया है-

1. **प्रोटो ऑस्ट्रेलियाड-** इस समूह के लोगो की विशेषता काले रंग की त्वचा, चपटी अर्थात धंसी हुई नाक और माथे की चौड़ाई कम। यह शारीरिक विशेषताएं गोंड (मध्य प्रदेश),मुंडा(छोटा नागपुर), हो(झारखण्ड) आदि में पाई जाती है।
2. **मोंगोलोइड-** इस समूह की विशेषता त्वचा का रंग हल्का, सर और चेहरा चौड़ा है, नाक का पूल अर्थात नासा दंड (नाक के ऊपर और आँख के बीच का भाग) बहुत नीचे है, और उनकी आँख के ऊपर की त्वचा एक तह के साथ तीरछी होती है अर्थात भौंहों के नीचे आँखों के ऊपर क्रीज एब्सेंट होता है। ये विशेषताएं भोटिया(मध्य हिमाचल, वांचू(अरुणाचल प्रदेश) नागा(नागालैंड), खासी (मेघालय) आदि में अप्पी जाती है।
3. **नेग्रीटो-** इस समूह के लोगो की त्वचा का रंग गहरा काला होता है (थोडा नीला होता हुआ दिखाई देता है), नाक चौड़ी होती है, माथे का आकार गोलाकार होता है। ये विशेषताएं कदर(केरला), ओंगे (अंडमान), जारवा (अंडमान द्वीप समूह)

ब्रिटिश काल और जनजाति - अंग्रेजों के आगमन से पूर्व मुस्लिम शासको द्वारा जनजातियो को पूरी तरह से अपने अधीन करने का प्रयास नहीं किया गया था। मुस्लिम शासको ने स्थानीय आदिवासी राजकुमारों या आदिवासी सरदारों के साथ समझौता करना ज्यादा पसंद किया। उन्होंने आदिवासी प्रथागत कानूनों, जीवन शैली और आर्थिक ताने-बाने में हस्तक्षेप नहीं किया। परिणामस्वरूप, मुस्लिम शासन के दौरान राजनीतिक उथल-पुथल के कारण भी जनजातीय जीवन उतना प्रभावित नहीं हुआ। अंग्रेजो के आगमन तक आदिवासी जंगलो और अपनी पुश्तैनी जमीनों के मालिक थे।

ब्रिटिश काल के दौरान भारतीय राज्य के आधुनिकरण और जनजाति- आदिवासी इतिहास का आधुनिक चरण अंग्रेजो के आगमन से हुआ। अंग्रेज देश के सभी हिस्सों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने की चेष्टा में थे, और अपने उद्योगों के लिए संसाधनों की तलाश में थे। इस तरह भारत के विशाल

क्षेत्र को केन्द्रीयकृत प्रशासन के अंतर्गत लाने की प्रक्रिया प्रारंभ हुई।

जनजातियो के प्रति अंग्रेजो की नीति के दो प्रमुख तत्त्व थे। पहला तत्त्व यह कि जनजातियो के मुख्य धारा से अलगाववाद को समर्थन या उसको स्वीकारना था (Bhowmick, 1980; Chaudhary, 1982) और इस तरह एक्सक्लूडेड और पार्शियली एक्सक्लूडेड क्षेत्र की अवधारणा अस्तित्व में आई। अंग्रेजों की यह नीति उनकी राजीतिक और उपनिवेशवादी महत्वाकांक्षा को पोषित करती थी। उन्हें इस बात का डर था कि जनजाति(तीर कमान के साथ जनजाति समुदाय के लोगो को अक्सर सैन्य,बर्बर योद्धा और जंगली समझा जाता था) अगर उनका संपर्क मुख्यधारा के लोगो के साथ हो गया तो अंग्रेजों के खिलाफ राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन को और बल मिलेगा। इस तरह जनजाति बहुल इलाको को मुख्याधारा से अलग-थलग रखने का प्रावधान अंग्रेजों के लिए प्रशासनिक और राजनीतिक दृष्टिकोण से उचित था।

अंग्रेजों की नीति का दूसरा तत्तव जनजातियो को सभ्य बनाने अत: आधुनिक बनाने का था। स्वजातीय केन्द्रवाद के मूल्यांकन की दृष्टिकोण से अंगेज जनजातियो को पाशविक जंगली और बर्बर मानते थे। विकासवाद के शास्त्रीय सिद्धांत जिसने 90 के दशक के अंत में और 20वी सदी के प्रारभ में अकादमिक ध्यान आकर्षित किया था, वे समकालीन आदिम को मानवता, जंगलीपन और बर्बरता के प्रारंभिक चरणों के अवशेष या अस्तित्व के रूप में माना था। ब्रिटिश एन्थ्रोपोलोजिस्ट सर इ. बी. टेलर के शब्दों में विरल आबादी और कठिन संचार-संपर्क वाले पहाड़ी या जंगली इलाको में रहने वाले ये लोग सामाजिक जीवाश्म थे, एक अध्ययन के रूप में जो मानव अस्तित्व के प्रागैतिहासिक चरणों को रोशन करेगा।

इस तरह जनजातियोका आधुनिकरण प्रारभ हुआ, इसी उद्देश्य की प्राप्ति हेतु दूर दराज के जनजाति बहुल इलाको में राज्य प्रायोजित ईसाई मिशनरीज का आगमन हुआ। हालांकि ध्यान देने योग्य बात यह है कि सारे जनजाति समूह आधुनिकता के फैरे में नहीं आए। बहुत से जनजातीय समूह आज भी अपनी वही प्राचीन विशिष्ट जीवन शैली के लिए जाने जाते। मिशनरीज का अधिकतर प्रभाव उत्तर पूर्व और छोटा नागपुर का पठार वाले क्षेत्र में पड़ा, जहाँ ईसाई मिशनरीज द्वारा विद्यालयों की स्थापना की गयी, अंग्रेजी शिक्षा, सभ्यता और धर्म का प्रचार प्रसार किया गया जिसका एक मात्र उद्देश्य जनजातियो को सभ्य बनाकर, उनकी सांस्कृतिक विरासत से दूर कर जो अंग्रेजो के हिसाब से पिछड़ी और असभ्य थी।

स्वातंत्रोत्तर काल- भारत के संविधान में 1950 में आदिवासी समुदायों को अनुसूचित जनजाति कहा गया। भारत के संविधान के अनुच्छेद 342 के खंड (1) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए राष्ट्रपति ने संयुक्त राज्यों के राज्यपालों और राज प्रमुखों से परामर्श करने के पश्चात अपने प्रसाद से **निम्नलिखित आदेश किया :-**

1. यह आदेश संविधान (अनुसूचित जनजातियाँ) आदेश, 1950 कहा जा सकेगा।
2. वे जनजाति समुदाय या जनजातियो या जनजाति समुदायों के भाग जो इस आदेश की अनुसूची के भाग 1 से लेकर भाग 22, तक में विनिर्दिष्ट है, उन राज्यों के सम्बन्ध में जिनसे वे भाग क्रमश: सम्बद्ध है, वहां तक जहाँ तक कि उनके उन सदस्यों का सम्बन्ध है, जो उन परिक्षेत्रो में निवासी है।
3. इस आदेश में किसी राज्य अथवा किसी जिले या अन्य प्रादेशिक खंड के प्रति निर्देश का अर्थ यह लगाया जाएगा की वह 1 मई 1976 को यथा गठित राज्य , जिले या अन्य प्रादेशिक खंड के प्रति निर्देश है। (GOI, 1950)

अत: अनुसूचित जनजातियाँ शब्द की परिभाषा संविधान के अनुच्छेद 366(25) इस प्रकार की गयी है, 'ऐसी जनजातियो या जनजाति समुदायों के अंतर्गत भागो या समूहों, जिन्हें संविधान के प्रयोजन के लिए अनुच्छेद 342 के अंतर्गत अनुसूचित जनजातियाँ होना समझा जाता है।'

संविधान सभा में जनजातीय विषय पर गहन वाद- विमर्श: अत: उपरोक्त बिन्दुओ से स्पष्ट है कि भारत में आदिवासी के लिए संवैधानिक प्रावधानों की आवश्यकता इसलिए पड़ी क्यूंकि वे समाज का ऐसा वर्ग थे, जो ऐतिहासिक रूप से हाशिये पर रहा है और सामाजिक, आर्थिक तथा शैक्षणिक दृष्टि से अत्यधिक पिछड़ा था।

संविधान सभा की सर्वप्रथम बैठक के तीन दिन बाद यानी 13 दिसम्बर 1946 को पण्डित नेहरु ने संविधान सभा में ऐतिहासिक उद्देश्य प्रस्ताव पेश किया तब इसमें कहा गया कि भारत के सभी लोगो के लिए न्याय, सामाजिक, आर्थिक एंव राजनीतिक स्वतन्त्रता एंव सुरक्षा की स्थापना सुनिश्चित की जाएगी साथ ही अल्पसंख्यको, पिछड़े वर्गों तथा जनजातीय समुदायों के लोगो को पर्याप्त सुरक्षा प्रदान की जाएगी। इस प्रकार संविधान एक महत्वपूर्ण दस्तावेज के रूप में स्वतंत्र भारत के भविष्य का रोडमेप होने वाला था। जिसमे आदिवासी समाज की भूमिका का निर्धारण उनके पारंपरिक मूल्यों, प्रकृति के साथ अध्यात्मिक घनिष्ठता तथा समृद्ध विविध सांस्कृतिक विरासत के साथ बिना किसी समझौतें के साथ ही किया जा सकता था।

आदिवासी जीवन शैली की पहचान प्रकृति के कस्टोडियन के रूप में रही है। आदिकाल से वे जंगलो में रहते आए है और प्रकृति के नियमो के साथ परस्पर तालमेल बिठाते हुए अन्य जन समुदायों से अलग सामाजिक अस्तित्व की रचना की जिसकी अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक महत्वता है। वैसे तो इतिहास के अलग-अलग काल खंडो में अपने अस्तित्व की रक्षा हेतु आदिवासी समाज के संघर्ष दर्ज है परन्तु ब्रिटिश काल में आदिवासियों के अस्तित्व की पहचान को बहुत अधिक ठेस पहुंची थी। इसलिए स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद यह सुनिश्चित करना आवश्यक हो गया था कि देश में के सभी वर्गों को सामान अवसर मिले और किसी भी समूह के साथ भेदभाव न हो। जनजातीय समुदायों की विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान और उनके पारंपरिक अधिकारों की सुरक्षा के लिए विशेष संवैधानिक उपाय आवश्यक समझे गए।

अत: संविधान में इनके अस्तित्व और सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण और संवर्धन को प्रमुखता से स्थान दिया जाना अपेक्षित समझा गया। इस तरह से यह विषय महत्वपूर्ण एंव संवेदनशील प्रकृति का हो जाता है जिस पर संविधान सभा में गंभीर और विस्तृत चर्चा की आवश्यकता थी।

संविधान सभा में जनजातीय विषय पर गहन विचार विमर्श के प्रमुख कारण निम्नलिखित है:

1. ऐतिहासिक उपेक्षा और शोषण
2. समृद्ध सांस्कृतिक विरासत को संरक्षण की आवश्यकता
3. सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़ापन
4. भूमि और संसाधनों पर अधिकार
5. स्वतंत्र भारत में राजनीतिक प्रतिनिधित्व और स्वायत्तता

संविधान सभा में आदिवासी विषयो पर विचार-विमर्श एंव उनके हितो को प्रखरता से प्रतिनिधित्व करने वालो में बिहार से जयपाल सिंह मुंडा सबसे

प्रमुख थे जिन्होंने संविधान सभा में बेहद वाक्पटुता से देश के आदिवासी समुदाय के बारे में सकारात्मक ढंग से अपनी बात रखीद्य जयपाल सिंह मुंडा का जन्म 03 जनवरी 1903 में छोटा नागपुर का पठार तब बिहार प्रान्त में हुआ था। वे भारतीय सिविल सेवक के साथ 1928 में एम्स्टर्डम में ओलिंपिक हॉकी में पहला स्वर्ण पदक जीतने वाली भारतीय टीम के कप्तान थे।

संविधान सभा में जनजातीय अधिकारों के प्रमुख प्रवक्ता– जयपाल सिंह मुंडा को संविधान सभा में जनजातीय समुदायों के एक सशक्त और मुखर प्रतिनिधि के रूप में जाना जाता है। उन्होंने 1946 में बिहार से संविधान सभा के लिए चुने गए और इस मंच का उपयोग उन्होंने पूरे भारत में आदिवासी लोगों के हितों को बढ़ावा देने और उनकी चिंताओं को आवाज देने के लिए किया। उन्होंने यह सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया कि संविधान में जनजातीय समुदायों के संरक्षण के लिए विशेष प्रावधान शामिल किए जाएँ। उन्हें आदिवासियों के संघर्षों के नेता और प्रतिनिधि के रूप में मान्यता मिली, जिससे उन्हें आदिवासियों के बीच 'मारांग गोमके' या सर्वोच्च नेता का उपनाम मिला।

प्रमुख हस्तक्षेप और मांगें:

1. **आदिवासी पहचान और स्वशासन–** जयपाल सिंह मुंडा ने इस बात पर जोर दिया कि आदिवासी भारत के मूल निवासी हैं और उन्हें अपनी सांस्कृतिक विरासत, भूमि और संसाधनों की रक्षा के लिए कुछ हद तक स्वशासन का अधिकार होना चाहिए। उन्होंने अपनी संस्कृति, परंपराओं और भाषा के संरक्षण की वकालत की।

2. **भूमि अधिकार–** उन्होंने संविधान सभा में आदिवासियों के भूमि अधिकारों को मौलिक अधिकार बनाने का प्रस्ताव रखा। उन्होंने मौजूदा कानूनों को बनाए रखने और उन्हें मजबूत करने पर बल दिया ताकि आदिवासियों की जमीनों की रक्षा हो सके।

3. **प्रतिनिधित्व और आरक्षण–** उन्होंने शिक्षा, रोजगार और विधानमंडल में अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षण का प्रावधान सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने संविधान सभा में जनजातीय प्रतिनिधित्व की कमी पर भी चिंता व्यक्त की, खासकर जनजातीय महिला सदस्यों की अनुपस्थिति पर।

4. **'आदिवासी' शब्द का प्रयोग–** उन्होंने 'अनुसूचित जनजाति' शब्द के बजाय 'आदिवासी' शब्द के प्रयोग पर जोर दिया, यह तर्क देते हुए कि आदिवासी किसी जाति व्यवस्था का हिस्सा नहीं हैं, बल्कि भारत के मूल निवासी हैं जिनकी अपनी एक अलग पहचान है।

5. **झारखंड राज्य की मांग–** जयपाल सिंह मुंडा ने जनजातीय समुदायों के लिए एक अलग राज्य 'झारखंड' की वकालत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने 1939 में आदिवासी महासभा के अध्यक्ष के रूप में यह मांग उठाई थी और इसे अपने राजनीतिक दर्शन का केंद्रीय बिंदु बनाया। हालाँकि, झारखंड राज्य उनके जीवनकाल में नहीं बन पाया, लेकिन उनकी इस मांग ने भविष्य के आंदोलन की नींव रखी।

दूरदर्शिता और विरासत– जयपाल सिंह मुंडा ने अपनी ऑक्सफोर्ड-शिक्षित पृष्ठभूमि के बावजूद, आदिवासियों की पारंपरिक जीवनशैली, उनकी समस्याओं और आकांक्षाओं को गहराई से समझा और उन्हें राष्ट्रीय मंच पर प्रस्तुत किया। उन्होंने यह सुनिश्चित करने का प्रयास किया कि आदिवासियों को केवल वन-निवासी के रूप में न देखा जाए, बल्कि उन्हें शिक्षित, आधुनिक और राजनीतिक रूप से जागरूक समुदाय के रूप में मान्यता मिले। उनके हस्तक्षेपों ने, जो कभी-कभी संविधान सभा के लिए असहज थे जो एक 'एकीकृत राष्ट्र' के विचार को पेश करने की कोशिश कर रही थी, आदिवासी मामले की एक शक्तिशाली अभिव्यक्ति का गठन किया। उनका योगदान आज भी जनजातीय अधिकारों और पहचान के संघर्ष में एक प्रेरणा स्रोत बना हुआ है, और भारतीय संविधान में जनजातीय समुदायों के लिए किए गए प्रावधानों में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। जयपाल सिंह मुंडा के आलावा डॉ. भीमराव अम्बेडकर जो संविधान सभा की प्रारूप समिति के अध्यक्ष थे। उन्होंने आदिवासियों और अन्य हाशिये पर खड़े समुदायों के लिए विशेष प्रावधानों का समर्थन किया। अम्बेडकर ने आदिवासियों की सामाजिक और आर्थिक पिछड़ेपन को दूर करने के लिए संवैधानिक आरक्षण और अन्य विशेष उपायों की आवश्यकता पर बल दिया। इसी क्रम में आगे जे.जे.एम निकोल्स रॉय का नाम भी महत्त्वपूर्ण है जिन्होंने 6ठी अनुसूची के प्रावधानों के हक में आवाज उठाई थी। वे आदिवासी क्षेत्रो के प्रशासन और उनकी स्वायत्तता के प्रबल समर्थक थे।

वेरियर एल्विन एक प्रसिद्ध मानवविज्ञानी और आदिवासी समाज के गहरे जानकार थे। वैसे वे संविधान सभा के सदस्य नहीं थे परन्तु उनकी विचारधारा का प्रभाव रहा। उन्होंने आदिवासी क्षेत्रो में राज्य के हस्तक्षेप को सीमित करने माँ सुझाव दिया, ताकि आदिवासी समुदाय अपनी संस्कृति और परम्पराओं को बनाएं रख सकें।

संविधान सभा में आदिवासी मुद्दों पर 16 दिसम्बर 1946 को पहली बार संविधान सभा में आदिवासी प्रतिनिधि के रूप में मरंग गोमके जयपाल सिंह मुंडा ने अपना अभिभाषण दिया, जिसके प्रमुख अंश है:

'मैं स्वतंत्रता के अपरिचित योद्धाओ, भारत के मूल निवासी, जिन्हें विभिन्न प्रकार से पिछड़ी जनजाति, आदिम जनजाति, आपराधिक जनजाति और अन्य सभी रूप में जाना जाता है, की लाखो अज्ञात भीड़- फिर भी महत्वपूर्ण- की और से बोलने के लिए खड़ा हुआ। 'श्रीमान, मुझे गर्व है जंगली होने के लिए, यही वह नाम है जिस से हम देश के अपने हिस्से में जाने जाते है। एक जंगली, एक आदिवासी के रूप में, मुझसे संकल्प की कानूनी पेचीदगियो को समझने की उम्मीद नहीं की जाती है। आप जनजातीय लोगो को लोकतंत्र नहीं सीखा सकते। आपको उनसे लोकतान्त्रिक तरीके सीखने होंगेद्य वे पृथ्वी पर सबसे अधिक लोकतान्त्रिक लोग है।'

उन्होंने अपने आगे के अभिभाषण में सम्पुर्ण आदिवासी समुदाय की तरफ से यह भरोसा एंव उम्मीद जताई कि वर्षो से उपेक्षित आदिवासी समाज की स्वतंत्र भारत में अब उपेक्षा न हो।

'मेरे लोगो का सम्पूर्ण इतिहास भारत के गैर- आदिवासियों द्वारा निरंतर शोषण और उन्हें बेदखल करने का रहा है, जो विद्रोह और अव्यवस्था से भरा हुआ है, और फिर भी मैं पण्डित जवाहरलाल नेहरु को उनके शब्दों में मानता हूँ। मैं आप सभी को आपके वचन पर मानता हूँ कि अब हम एक नया अध्याय शुरू करने जा रहे हैं। स्वतंत्र भारत का नया अध्याय जहाँ अवसर की समानता हो, जहाँ किसी की उपेक्षा ना हो।'

उन्होंने संविधान सभा में आदिवासी प्रतिनिधित्व की कमी की आलोचना की और विशेष रूप से आदिवासी महिलाओ की अनुपस्थिति की तरफ इशारा किया। उन्होंने तर्क दिया कि आदिवासी समुदाय के सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक सशक्तिकरण के लिए विधायी हस्तक्षेप अनिवार्य था। भारतीय समाज में पुरुषो की तुलना में महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति वैसे ही कमजोर है। स्वास्थ्य और शिक्षा के अवसरों

में घोर असमानता ने उनमे निर्णय लेने की क्षमता को ओर भी कम किया है। इसका प्रभाव संविधान सभा में भी दिखता है, सभा में कुल महिलाओ की संख्या केवल 15 थी जिनमे आदिवासी महिलाओ की संख्या शुन्य थी। हालाँकि ऐसा नहीं था की उस समय योग्य आदिवासी महिलाओ की कमी थी। रानी गाइदिन्ल्यू, हेलेन लेपचा, पुतालिमाया तमांग, दशरी बेन चौधरी आदि जैसी प्रमुख आदिवासी महिला थी जिन्होंने स्वतंत्रता के आन्दोलन में अपना अमूल्य योगदान दिया था।

इस सन्दर्भ में 19 दिसम्बर,1946 संविधान सभा में उनका प्रस्तुत भाषण उल्लेखनीय है। 'आदिवासियो से मेरा मतलब है, महोदय, केवल पुरुष ही नहीं बाकि महिलाएं भी.... जबकि मुझे इसमें अपना नाम मिलता है, में यह बताना चाहता हूँ कि सलाहकार समिति में किसी भी आदिवासी महिला का नाम नहीं है। इसे कैसे छोड दिया गया है..? यह उन लोगो के साथ कभी नहीं हुआ जो समिति के सदस्यों के चयन के लिए जिम्मेदार थे।'

अत: संक्षेप में यह कहना ठीक होगा कि जयपाल सिंह मुंडा ने विशेष रूप से आदिवासियों की सांस्कृतिक पहचान और उनके अधिकारों के संरक्षण के लिए जोरदार तरीके से आवाज उठाई।

छठी अनुसूची और आदिवासी क्षेत्रो में स्वायत्ता शासन की मांग को जे. जे. एम. निकोल्स रॉय ने प्रबल तरीके से संविधान सभा में रखा। जे. जे. एम. निकोल्स रॉय मेघालय के खासी जनजाति से आते है। उन्होंने सभा को जनजातियों की आशंकाओ से अवगत करवाया। उन्होंने 6वी अनुसूची बनाकर उनकी चिन्ताओ को दूर करने का प्रस्ताव रखा, जो उन्हें अपनी परपराओ के अनुसार स्वशासन का अधिकार देगा। रॉय के प्रस्ताव का असम के उनके साथी सदस्य रोहिणी कुमार चौधरी ने विरोध किया,जो आदिवासियों को गैर-आदिवासी आबादी में शामिल करना चाहते थे। चौधरी ने तर्क दिया कि छठी अनुसूची ने आदिवासी आबादी को अन्य भारतियों के साथ घुलने-मिलने रोकने की ब्रिटिश नीति को जारी रखा और भी सदस्यों जैसे कुल्हाड़ चलिहा और बी. दास ने चौधरी का समर्थन किया और दर जाहिर किया कि छठी अनुसूची में साम्यवाद को भड़काने की क्षमता है। उन्होंने यह भी कहा कि रॉय के इस प्रस्ताव में द्धि राष्ट्र सिद्धांत की निरंतरता है।

रॉय ने अपनी प्रभावी तर्क शैली से उपरोक्त शंकाओ को मिटाने का सफल प्रयास किया। रॉय ने गांधीवादी सिद्धांतो के माध्यम से लोकतंत्र और राष्ट्रनिर्माण में स्वशासन की महत्वत्ता को बताया। उन्होंने कहा कि स्वशासन के अधिकार से न सिर्फ आदिवासियों में विश्वास उत्पन्न होगा बल्कि वे अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान को बनायें रखने में सक्षम भी रहेंगे।

अत: संक्षेप में यह कहना उचित होगा कि गहन वाद विवाद और विचार विमर्श के बाद संविधान सभा में निम्नलिखित प्रावधानों पर आपसी सहमती बनी जिससे विभिन्न क्षेत्रो में अनुसूचित जनजातियो के सर्वांगीण विकास और अधिकारों को सुरक्षित रखने और उनके हितो को बढ़ावा देने के लिए संविधान में कई प्रावधान सम्मिलित किए गए है जिसका मूल उद्देश्य उन्हें राष्ट्र की मुख्यधारा में शामिल किया जा सके।

समकालीन प्रासंगिकता – भारतीय संविधान सभा में जनजातीय मुद्दों पर हुई गहन बहसों और उनसे उत्पन्न संवैधानिक प्रावधानों का आज के समय में मूल्यांकन करना अत्यधिक समकालीन प्रासंगिकता रखता है। यद्यपि संविधान निर्माण के समय की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ वर्तमान से पूर्णरूप से भिन्न थीं, परंतु उन बहसों में निहित मूल सिद्धांत, आशंकाएँ और आकांक्षाएँ आज भी जनजातीय समुदायों की स्थिति को समझने तथा उनके समक्ष खड़ी चुनौतियों का समाधान खोजने के लिए एक महत्त्वपूर्ण वैचारिक आधार प्रदान करती हैं।

वर्तमान परिदृश्य में, भूमंडलीकरण, तीव्र औद्योगीकरण और विकास परियोजनाओं के विस्तार ने जनजातीय क्षेत्रों पर अभूतपूर्व दबाव डाला है। जल, जंगल और जमीन पर आधारित जनजातीय समुदायों की पारंपरिक आजीविका और सांस्कृतिक पहचान इन प्रक्रियाओं के कारण गंभीर संकट का सामना कर रही है। ऐसे में, संविधान सभा में भौतिक विकास के नाम पर भूमि विस्थापन, वन अधिकारों और जनजातीय स्वशासन को लेकर हुई बहसें यह समझने में सहायक सिद्ध होती हैं कि राष्ट्र निर्माताओं ने इन संवेदनशील मुद्दों को कितनी गंभीरता से लिया था। उनकी दूरदर्शिता आज भी हमें यह याद दिलाती है कि विकास की किसी भी योजना को जनजातीय समुदायों की सहमति और उनके पारंपरिक अधिकारों का सम्मान किए बिना लागू नहीं किया जा सकता।

इसके अतिरिक्त, संविधान में जनजातीय समुदायों के लिए विशेष प्रावधानों, जैसे पाँचवीं और छठी अनुसूची, के बावजूद उनके क्रियान्वयन में आज भी कई विसंगतियाँ मौजूद हैं। पेसा (Panchayats Extension to Scheduled Areas - PESA) अधिनियम, 1996 जैसे कानून, जिनका उद्देश्य जनजातीय क्षेत्रों में स्वशासन को मजबूत करना था, पूर्ण रूप से प्रभावी नहीं हो पाए हैं। संविधान सभा में सत्ता के विकेंद्रीकरण और स्थानीय समुदायों को सशक्त करने पर जो बल दिया गया था, वह आज भी इन प्रावधानों के प्रभावी क्रियान्वयन के लिए एक मार्गदर्शक सिद्धांत के रूप में कार्य करता है। उन बहसों से यह समझा जा सकता है कि केवल कानून बनाना पर्याप्त नहीं है, बल्कि उनकी भावना के अनुरूप उनका क्रियान्वयन सुनिश्चित करना कहीं अधिक चुनौतीपूर्ण और आवश्यक है।

सामाजिक-सांस्कृतिक स्तर पर भी संवैधानिक बहसों की प्रासंगिकता बनी हुई है। जनजातीय पहचान, भाषा, और संस्कृति के संरक्षण पर संविधान निर्माताओं का जोर वर्तमान में बढ़ती सांस्कृतिक एकरूपता और मुख्यधारा के प्रभाव के संदर्भ में विशेष महत्त्व रखता है। जयपाल सिंह मुंडा जैसे नेताओं द्धारा उठाई गई 'आदिवासी पहचान' की बात आज भी जनजातीय समुदायों द्धारा अपनी विशिष्टता को बनाए रखने के संघर्ष में प्रतिध्वनित होती है।

अंतत:, जनजातीय समुदायों के राजनीतिक प्रतिनिधित्व और उनके सशक्तिकरण को लेकर संविधान सभा में हुई चर्चाएँ आज भी प्रासंगिक हैं। जब हम देखते हैं कि जनजातीय क्षेत्रों में राजनीतिक नेतृत्व किस हद तक अपने समुदाय की वास्तविक आकांक्षाओं को प्रतिबिंबित कर पा रहा है, तो हमें उन बहसों की ओर लौटना पड़ता है जहाँ एक सच्चे लोकतांत्रिक और समावेशी प्रतिनिधित्व की नींव रखी गई थी। यह शोध जनजातीय मुद्दों पर संवैधानिक बहसों के ऐतिहासिक संदर्भ और उनकी वर्तमान प्रासंगिकता के बीच के सेतु का निर्माण करेगा, जिससे वर्तमान चुनौतियों को संबोधित करने और भविष्य के लिए अधिक न्यायसंगत तथा प्रभावी नीतियों को आकार देने में सहायता मिल सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. Banerjee, P. (2016). writing the Adivasi: Some histographicacl notes. *The Indian Economic and Social History Review* , 1-23.
2. Bhowmick, P. (1980). *Some Aspects of Indian Anthropology.* Calcutta: Subernarekha.
3. Chaudhary, B. (1982). *Tribal Developments in*

India:Problems and Prospects. Delhi: Inter-India.
4. GOI, l. m. (1950). *Constitution(ST) order 1950.* Delhi.
5. Hutton, J. (1933). *Censu of India 1931.*
6. Mehta, B. H. (1953). HISTORICAL BACKGROUND OF TRIBAL POPULATION. *The Indian Journal of Social Work , 14* (3), 236-244.
7. Morton, F. (1975). *The notion of tribe.* Menlo park, CA: Cummings publishing company.
8. (1933). Oxford english dictionary.
9. Ray, N. (1972). Tribal situation in India.
10. Verma, R. (1990). *Indian tribes through ages .* Publication division of ministry of information and broadcasting .
11. Ghurye, G.S.(1959), *The Scheduled Tribes*, Bombay, Popular Book Depot
12. Devy, G.N.(2009) *Oxford India Elwin*, Oxford University Press
13. GoI, Department of Social Security(1965), The Report Of The Advisory Committee on the REVISION OF THE LIST OF SC and ST
14. https://tribal.nic.in/downloads/Statistics/Other Report/LokurCommitteeReport.pdf

****